राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
के सहयोग से प्रकाशित

ढाणी का आदमी

जयसिंह नीरज

कविता प्रकाशन
अलवर

प्रथम संस्करण : 1985

प्रकाशक : कविता प्रकाशन
88, आर्य नगर, अलवर, राजस्थान

मुद्रक : कान्तीप्रसाद शर्मा द्वारा रुचिका प्रिण्टर्स,
नवीन शाहदरा दिल्ली-110032

DHANI KA ADMI
Poems by Jai Singh Neeraj

ममतामयी माँ को
जिसने ग्रामीण बोध
की घुट्टी दी

क्रम

पूर्वकथन

कविता एक अन्तश्चेतना है जो पहाडी झरने की तरह रग-रग से फूटती है। वर्षा-जल पहाड़ की आत्मा मे मिला है और फिर वनस्पतियो, खनिजों की सुगन्धि लेकर झरने का रूप धारण करता है।

वह झरना किस दिन झरा यह तो कुछ याद नही पर सन् 43 का वर्ष जरूर था। गांव के बाहर पीपल का विशाल वृक्ष अपनी जडें फैलाए। इन्ही आंकी-बाकी जडो पर मैं जा बैठा और कुछ लिखने लगा, पर वह रचना भी आज कहा है? बचपन की याद की तरह कही खो गई है।

पीपल की विशाल जड़ो पर मैं रोज ही जा बैठता और लगता जैसे अदृश्य लोक की देवी झिरमरिए पीपल पत्तो से उतरकर मुझे जागृत कर रही है। ये सब घटनाएँ परी-लोक की कथा-सी लगी और मेरी सवेदना परीकथाओ से मेल खाने लगी।

मेरा मन चचल हो उठा—
परियो सा चचल मेरा मन
उड़ती तितली सा बार-बार
लेकर जीवन का मधुर प्यार
उस दूर क्षितिज मे ढूंढ रहा
बीती बातो का तनिक सार
वह धीर-वीर बन कर अधीर
चुनता है अपने आसू कण ॥
परियो सा···

गांव से अलवर पढने आ गया, प्रारम्भ मे मन नही लगा। मैं और रघुवीर सिंह होस्टल के डडे पर बैठे गाव की आती-जाती बसो को पथराई आंखों से देखते रहते। वह तो वापिस गाव भाग ही गया पर मैं रह गया। कालेज के बड़े बाग के प्राकृतिक वैभव को देखकर मन फिर रम गया। उन दिनों पतजी की रचनाओ

से तादात्म्य हो गया था। वड़े वाग के आम, जामुन, नारगी, नीवू और फल-फूलों के कुजो मे पक्की नहर के आसपास मन रमड़ गया। पतजी की नकल पर गीत लिखने लगा, 'वियोगी होगा पहला कवि' की उक्ति सार्थक होने लगी। वह एक अनाम भोली-सी लड़की, नीलाकाश-सी विशाल आखें, लम्बी इकहरी, शर्मीली-सी किस कोने मे मन मे परी-सी पैर गई, आज तक पता न लगा। न कभी छुआ, न जी भर कर निहारा, सवाद तो दूर रहा, पर वह जिन्दगी मे प्रथम प्यार की अनुभूति-सी ऐसी बैठ गई कि इस लबी उम्र के बाद भी वह मन मे कही-न-कही आसन जमाए बैठी है। वह मेरी कविता है, साक्षात कविता, उसके विरह मे सन् '49 से '55 तक गीत लिखे। मीठे-मीठे विरह-गीत, जो राजस्थान के पत्रो के अतिरिक्त रसवन्ती लखनऊ, अजन्ता हैदराबाद, वीणा इन्दौर आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओ मे छपे। गीतों मे विरह का ज्वार ही उमड पड़ा—

मैं सागर का ज्वार वना लहराता हूँ
पर प्राणो की प्यास न कोई भी पाया
मिलन यामिनी सुन्दर है पर जीवन मे
कौन खुशी के गीत अधिक दिन गा पाया
इसीलिए मै विरह रागिनी गाता हूँ
चाहो तो आसू दो चार बहा लेना।
प्रीत करो आसान निभाना मुश्किल है
चाहो तो तुम मन का मीत बसा लेना।

प्रारम्भ की रचनाएँ अप्रकाशित ही पडी है, पुरानी यादो की तरह। उन्हे पढते समय निरी भावुकता-सी लगती है, पर मन मे कहीं गुदगुदी भी उठती है। उन्हे यो ही निरस्त नही किया जा सकता, क्योकि वह ही तो असली जमीन है जिसने रचनाधर्मिता का रियाज़ सिखाया।

प्रकृति और प्रेम-गीतो के साथ प्रगतिशील गीत भी लिखे। आदमी को भुखमरी और अकाल मे एक रोटी के लिए तरसते देखा। सीतू चमार खाम मे से गला हुआ अनाज निकालता था और गाव के ठाकुर हमारे दादाजी उसे अनाज देने के लिए भी नीम पर चढाने-उतारने का तमाशा कराया करते थे। उस खेल को देखकर हम लोग हसते थे, पर मेरे मन का एक कोना कही भयभीत भी होता रहता था। सोचता था—सोचता था, आखिर आदमी इतना दीन-हीन क्यो हो जाता है ?

वह दूर गरीबो की बस्ती
खाने को जिसके नाज नही
कल था तो खाना आज नही
फरियाद सुनावें किसको वे
सुनता है जिनकी राज नही

फिर भी रो रो कर जीने को
दिखलाती है अपनी मस्ती।
वह दूर गरीबो···
··· ···

मुझे यह कहते हुए तनिक भी सकोच नही है कि राजस्थान मे नयी कविता की तकनीक को अपनाने की पहल सबसे पहले मैंने की। अतुकांत कविताए अवश्य लिखी गयी, पर उन्हें नयी कविता की परिभाषा मे सम्मिलित नहीं किया जा सकता। कुछ लोग आज भी रबर-छन्द मे रचनाएं करते है और नवलेखन का भ्रम पालते है, उनके बारे मे क्या कहा जा सकता है? यह सब नयी पत्रिकाओ को पढने और नये साहित्यिक आन्दोलनो के प्रति जिज्ञासा होने के कारण ही हुआ। सन् '55 से प्राय. गीत लिखना छूटा कि आज तक कोई गीत लिखा ही नही और उसके स्थान पर पूर्णतया नयी तकनीक को अपना लिया। 'कमरा और जीवन' प्राथमिक नयी कविता मे से ही है—

एक कमरा टूटे कपाट
छत की सीलन सा
बुद बुद है जीवन
× × ×
कैसे भुला दूं इन प्रतीको को
कैसे छोड दूं इस शरीर को
मेरे लिए कमरा और जीवन
बराबर है।

सन् '55 से लेकर '62 तक की रचनाए—'नीलजल सोई परछाइया' मे सकलित है। एक प्रकार से राजस्थान मे नयी कविता की भावभूमि पर यह पहला सकलन था, जो अपने समय मे चर्चित रहा। विशेषत 'सतोष मेरा दुश्मन', 'कभी-कभी', 'शहनाई सुनकर', 'जार्ज कीट की नायिका से', 'उद्दाम यौवन' जैसी रचनाओ की सराहना की गई। गुजराती और मराठी मे कुछ रचनाओ के अनुवाद भी हुए। इस सकलन की रचनाओ मे नयी कविता का सश्लिष्ट मुहावरा, विचार वैविध्य और भाषा के नव-प्रयोग द्रष्टव्य है। चित्रकला और सगीत के प्रति विशेष अभिरुचि होने के कारण कला के अन्तर अनुशासन के आधार पर शब्दों मे अन्य कलाओं की अमूर्त भावाभिव्यजना को अभिव्यक्ति देने का प्रयास कुछ रचनाओं में मुखर हुआ है। 'शहनाई सुनकर' रचना को इस दृष्टि से मै अपनी उत्कृष्ट रचना आज भी मानता हूं—

शान्त······बहती नदी······
आकुल फेनिल झरने का मिलन

घुमडते जल का प्रत्यावर्तन।
ऊपर नीचे झूला झूलती
किरणों की खिलखिलाहट
दह मे कूदते······

गहराई से उतराकर
स्वासों पर स्वांस ले
तलछट पर छपाछप तैरते स्वर।
शान्त···बहती नदी······
आकुल मिलते झरने
मुख मे घुलते बताशे
फूटते बुलबुले,
छहराती बूंदो के मादक तीर
नस नस में पुरकर
करते हैं अधीर।

'63 से '71 की रचनाधर्मिता 'दु खान्त समारोह' मे अभिव्यक्त है। समय की शिला पर बदलते-उभरते पदचिन्ह, हिन्दी कविता का तत्कालीन मिजाज, साठोत्तरी रचना की विचार और शिल्प मे घडावट, यहाँ तक कि अकविता का भदेस प्रभाव भी इन रचनाओ मे देखा जा सकता है। घूमने का अधिक उत्साह रहा। काव्य और चित्रकला के अन्तर-अनुशासन पर शोध-कार्य करने के बहाने आधा हिन्दुस्तान घूम लिया। शिमला, नैनीताल, दार्जिलिंग, कलकत्ता, भुवनेश्वर, जगन्नाथपुरी, कोणार्क, बनारस, बौद्धगया, अजन्ता, अलोरा, बबई, पूना और सम्पूर्ण वृहद राजस्थान के विभिन्न कला सग्रहालय और सास्कृतिक केन्द्र घुमक्कडी के केन्द्र रहे। यायावरी सृजन-प्रक्रिया पर कितना प्रभाव डालती है, इसे रचनाकार ही भली प्रकार समझ सकता है। खुली आँखो से एक-एक ब्यौरे मे गहराई तक जाना, उसे अन्तर मे गहराई तक रचा-पचा लेना और फिर समय की साधना में झरने की तरह फूटना। झरना कैसी-कैसी रचनाओ को जन्म देता है, यह कवि भी पूर्व मे नही जान पाता। रूप, रस, गध, स्पर्श मे डूबी रचना को जब रचनाकार रगरेज की भाँति धुपहले परिवेश मे सुखाने के लिए फैलाता है तो न जाने कैसे-कैसे बँधेज उभरकर स्वयं रचनाकार को भी मोहित कर लेते है।

'दु खान्त समारोह' एक लम्बी कविता है। लम्बी कविता की सश्लिष्ट बुनावट, सामाजिक विसगतियो का बेबाक चित्रण, नगरबोध की यातनाएँ, मशीनीकरण और औद्योगीकरण के कारण आदमीपन की समाप्ति, मान और

मूल्यों का विघटन, लगातार चले आ रहे शोषण का उद्घाटन इस रचना के प्रमुख मुद्दे रहे। इस दृष्टि से मेरे कवि का सोच और विचार सहज ही पकड मे आ जाता है। समकालीन रचना का सन्दर्भ दु.खान्त समारोह की रचनाओ मे अनायाम ही देखा जा सकता है—

दरअसल नौकरी
और रोटी तक पसर गया हूँ मैं
अपनी घृणा और बेकारी को
मच देना चाहता हूँ।

इस सकलन की भूमिका में मैंने रेखाकित किया है कि मेरे लिए कविता लिखना एक लम्बी लड़ाई है। इस लडाई मे हम लोग कतार बाँधे एक लम्बी कविता की रचना मे सलग्न हैं। बीच का आदमी आडी-तिरछी रेखाएँ खीचकर नदी के बहाव को रोकता रहा है। गत वर्षों से जो समारोह सडक पर तेजी से बढ रहा है उसे दुखद बनाने की साजिश को नगा करना तथा आक्रोश को अर्थवान बनाकर आज के आदमी को जड़ता के दायरे से निकालकर मुक्ति के दायरे तक ले जाना कविता का काम है।

× × ×

'72 से लेकर आज तक की रचनाएँ 'ढाणी का आदमी' मे सकलित हैं। यों भी मेरी कविता लिखने की गति कभी तेज नही रही है, अत एक दशक मे एक छोटे सकलन-भर के लिए कविताएँ जुट पाती रही हैं। इस सकलन की रचनाओ से सहज ही ज्ञात होगा कि मैं नगरबोध से ग्राम्यबोध की ओर लौट गया हूँ। आज भी मेरी जड़ें गाँव में हैं। इस बहाने मैंने अपनत्व की ओर ताका-झाँकी की है।

जिन चरित्रो को मैंने कविता का माध्यम बनाया है, वे आज भी गाँव मे मौजूद है। ढाणी का वह आदमी जिसने सच्चाई की ओर सकेत किया है, मुझे देखते ही हँसने लगता है। पाँचू कुम्हार, मल्लू खटीक कविता मे होने के अहसास से अपने को अमर समझने लगे है। कई बार मुझे वे साक्षात कविता लगते है। ग्रामीण शब्दावली से कविता गाँव की बजर धरती मे रची-पची-सी लगती है। जब-जब आकाशवाणी से ग्रामवासियो ने रचना सुनी है, वे अति उत्साह मे उमगने लगे है, तब मुझे लगता है कि मेरी रचना की, कही न कही, सार्थकता है।

एक दशक तक रची गयी इन कविताओ मे कई तरह का स्वाद है। रचनाकार कितने ही स्तरो पर जिन्दगी जीता है, उसे अनुभव करता है। अन्य सकलनों की तरह रचनात्मक वैविध्य इस संकलन मे भी मिलेगा पर इतना अवश्य है कि

दुरूहता से सरलता की ओर तथा स्पष्ट वैचारिक बोध की ओर मेरा कवि विकासमान हुआ है। क्या आपको ऐसा नही लगता ?

राजस्थान साहित्य आकदमी ने इस मकलन को प्रकाशन से पूर्व ही सुधीन्द्र पुरस्कार से सम्मानित किया एतदर्थ आभार।

वसत पचमी '85 जयसिंह नीरज

7 ढ 26, जवाहर नगर
जयपुर

बचपन

छोटे बच्चो का किलकना
उन्मुक्त दूध-सी हँसी
मचल-मचलकर अनाम आशा
की ओर लपकना
दरअसल कोई आदमी अपने
बचपन से दूर नही हो सकता।

बचपन एक जीवन्त अहसास है
छुक-छुक रेल चलाना, इक्कल-दुक्कल
खोलते हुए फुदकना, नीलाकाश-सी
साफ आँखो में भविष्य के सपने बोना
निश्छलता, पवित्रता, तितली की रंगीन
भिनकार का अहसास है बचपन।

बचपन से कोई दूर नही हो सकता
एक कोने मे छिपा रहता है
आँख-मिचौनी के नायक-सा
ऊब और तिक्त क्षणो मे
रग भर देता है वह
बाहर निकलकर कट्टस कर देता है
सारी दुविधा को।

कैसे दूर हो सकता है आदमी
बचपन से, रगीन सपनो से

आशा के लहक भरे क्षणो मे
पत्थर आदमी मोम-सा पिघलकर
बहने लगता है बच्चो के साथ।

बचपन लौटकर आता है
पुत्र, पौत्री, दोहित्र के नाम पर
कधे पर चढकर हांक लगाता है
और सारा शरीर झकार उठता है
सितार की तरह।

पहचान

दूर से ही हाथ हिलाकर
नमस्कारना और रास्ता नापना
सड़कीय प्रेम का प्रदर्शन
इस तरह वाकई
आदमी की पहचान
नही हो सकती ।

चीटो की तरह मुंह मिलाकर
पहचानो उसे
वह भी तुम्हारी ही तरह
हाड-मांस और बहती हुई
ऊर्जा का स्रोत ।

उसकी पीठ मे आंखें
टांक कर देखो
कहां रहता है, क्या ओढता-बिछाता है
उसका चूल्हा क्या पकाता है
उसकी भगौनी का रंग
उसकी थाली की आवाज़
वाकई सड़क से आदमी की
पहचान नही हो सकती ।

तुम घुस जावो उसके घर मे
झांक आवो उसके आटे का पीपा

तेल की कुप्पी, मिर्च मसालेदानी
चीनी का डिब्बा, गुड की हडिया
खाली मन की तरह वे
बज तो नही रहे है।

तुम धँस जाओ उसके
तन में, उसके पसीने की गन्ध मे
उससे गलबाँही डालकर
बतियाओ दुख-दर्द
कितना सँवार है
कितना जाल है उसके दिल पर।

तुम उतर जाओ तहखाने मे
उसी के कपड़े पहन
रोटी और चटनी का स्वाद
चखने लगो
उसके दर्द की ही नही
अपने होने की वजह ढूँढो
वाकई सडक से आदमी की
पहचान नही हो सकती
फिर स्वय अपनी ही पहचान
यो तो मुश्किल है।

विरोधाभास

यह दगाबाज शरीर
जिस पर मेरा बस नही
चलने-फिरने तक से लाचार
एक ही जगह गिडोले-सा
पड़ा रहता है।

बैसाखियां साधकर
खडा होता हूँ
और खिड़की पर टिक जाता हूँ
खिडकी के पार उत्ताल तरगे
जो आसमान छूने को लालायित है
स्कूली बच्चो की चुस्त कवायद
भागते हुए खिलाड़ियो की
उड़ती हुई साँसें
एक रंग घुलने लगता है मेरे मन मे
और फूलों की तरह बिखर जाता है।

मैं वापिस लौट पड़ता हूँ
मेरे अतीत में
फौजी परेड, युद्ध की भाग-दौड
खदको मे अड़े रहने की ललक
भूखे भेड़ियों-सी
क्रूर बर्फीली हवा मे खेल
वाकई बहादुरी कितनी आसान थी

जब जवानी थी और जिस्म में जान थी।

और इसके बाद
मैंस की महक भरी मस्तानी चाल
छुट्टियों में सरसों के खेत का वसंत
उसके मेहँदी लगे हाथ
गुलमुहर-सा दमकता मुख
वह मेरे मन में सूरजमुखी-सी
खिल जाती है,
माँ मुझे नाम लेकर पुकारती है
सारी बर्फीली घाटियों को लाँघ कर
मैं उसकी गोद में समा जाता हूँ।

कैसा दगाबाज है यह शरीर
जो मुझे हिलने नहीं देता
पर मेरा मन
फूलों लदी एक टहनी है
जिसकी खुशबू से
मेरा कमरा महक उठता है।

स्पर्श, श्रवण और दर्शन का
वैभव लिये मैं
जिन्दगी को रंगीन बनाता हूँ
क्या कर लेगा दगाबाज मेरा यह शरीर ?
मैं अब भी भरपूर हूँ
जिन्दगी जीने के लिए।

मौत

वह भूख से तगे खाता
एक आधा रोटी के लिए
दर-दर भटकता रहा
अंत में निराश होकर
खुले आसमान के नीचे
हवा खाने लगा।

चौडी सड़क को उसने देखा
और भागते हुए बस और ट्रकों को
उस पार की जिन्दगी के लिए वह लपका
पर बीच में ही ट्रक से टकराया
और पहिये के नीचे
उसका सर मतीरे-सा फूट गया।

अब वह सडक के बीच पडी लाश था
ट्रक उसे कुचलते, मुरकस निकालते
पेड़ पर बैठ कौवो ने
सबसे पहले लाश को देखा
वे कांव-कांव करने लगे
और लाश को नोचने लगे।

कौवो की कांव-कांव
कुछ कुत्तों के कान खड़े हुए
और वे सड़क की ओर दौड़ पड़े
उनमे से एक डांगी ने

अपनी ही जाति को
खींच कर
सड़क किनारे ला पटका
और मुंह मारने लगा
बाकी कुत्तो ने गुर्राते और गुथते हुए
उसे मास के टुकडो मे बदल दिया।

आसमान मे उडते गिद्धो को
कौवो और कुत्तो की जमात नजर आयी
वे लपक कर
छाताधारियो की तरह
जमीन पर कूद पडे, एक नही दस-बीस
और बचे-खुचे लोथडो को
खेच-खेच कर निगलने लगे।

थोडी ही देर मे न लाश रही
न मास के लोथड़े
केवल सडक के बीच एक खूनी
चिकत्ता शेष था,
कौवे नीम पर बैठे चोच लडा रहे थे
कुत्ते मिट्टी मे पडे सुस्ताते रहे
और गिद्धो की जमात
बुड्ढे नेताओ की तरह
चिंतन मे मग्न थी।

हाका

आदमी की खोपड़ी हो या नारियल
फर्क इतना है खोपडी का तनाव
मर्मभेदी चीत्कार मे बदल जाता है
थरथराती हुई एक लौ
सीने के पार खुब जाती है।

भागते हुए खरगोश का
झाड़ियो मे लहूलुहाना
कातर आंखो को
सख्त चेहरे की ओर ताकते
जगल बूट का सोल
गर्दन पर आजमाते
और धीरे-धीरे गें-गे की
घरघराहट मे दम तोड़ते देखना
भला किसको पसन्द आ सकता है ?
आ सकता है ! आ सकता है ! !
एक साजिश भरी शैतान पीढी को।

जगल मे हाका कर जानवरो को
फँसाने की आदिम लालसा
वियाफा से लेकर वियतनाम
के जगलों में हाका करते शिकारी
कबूतर का फड़फड़ा कर खूनी धूल
मे कलावे लेना

भयाक्रांत मुर्गाबियों की कांय-कांय
अतड़ियाँ झाड़ियों मे फँसाते खरगोश
घायल शेर जीभ निकाल कर
झुरमुट मे हाँफते
ड्या-ड्या करते हुए अधमरे
हिरन, रोझ, और बारहसिंगे।

आग लगी है जगल मे
बिलों में छिपे——जीव कुरमुराते
किसको पसद आ सकता है
हड्डी, मास, मज्जा, खून और
खून का चिटख-चिटख कर जलना
आ सकता है! पसन्द आ सकता है!!
एक साजिश भरी शैतान पीढ़ी को।

वह

वह लट्ठ लिए घूमता है
अरने भैंसे-सा
डराता और धमकाता है सभी को
सूरज की ओर जाने वाली पगडडियाँ
बद पडी है
वह अपने को ही सूरज सिंह कहता है।

भय और त्रास के बीच झूलते हुए लोग
घबराते है हादसे से
पुलिस और कचहरी से
हाँ में हाँ मिलाते है
और अपने ही मे मर जाते हैं।

बगल मे पिस्तौल लगाए
वह मूछों पर बल देता है
अपने सत्य को सब पर लादता है
मारूँगा ! काटूंगा ! !
ऐसा नही होगा, वैसा नही होगा
गूँजते रहते है रोज वही-वही शब्द,
मुँह अँधेरे ही लोग खेतो में
और साँझ पडे घरो मे
घुस जाते हैं
भक्क-भक्क जलती हुई कऊ
सवादहीन धुँवाती रहती है।

इन दिनों शोर-शराबा है
हर शहर और कस्बे मे
यही है 'वह'
पकड़ लो बाँध लो
पर पुलिस वालो की तरह
वे उत्तर की ओर भागते हैं
जबकि डाकू कूच कर गये हैं
दक्षिण को।

सचमुच म्याऊँ का मुंह पकडने के लिए
अब भी बहुत कम लोग तैयार है।

इन्तजार

कितनी मुश्किल होती है
इन्तजार
प्रेम प्रसग की या कि
फांसी के फदे की
जबकि आदमी एक-एक
बूंद रिसता है
रेत घड़ी की तरह
खाली हो जाता है।

टेलीफोन पर कॉल बुक
करने से बतियाने की
इन्तजार घडी तक
कैसी कैद होती है
महसूस करता हूँ
मैं उस आदमी की घुटन,
जिसकी जबान पर ताला
और एक घूंट स्वच्छंद
जिन्दगी जीने की ललक
पक्षी की भांति सारा
आकाश नापने की जोखिम।

मैं शब्दो को स्वच्छन्द
कर देना चाहता हूँ
उस दिन के लिए

जब आदमी सीखता है
फाँसी के फन्दे को ढीलना
या दूसरे की जबान को
शब्द देना
कितनी मुश्किल होती है
इन्तजार
प्रेम प्रसग की या कि
फांसी के फन्दे की।

यात्रा

यात्रा कभी होती नही है
खत्म
लगता है पडाव
पर फिर वही से शुरू होती है
एक नई दिशा।

कोहकाफ की गुफा के
एक कोने से
दरकने लगती है शिला
प्रकाश का चिकत्ता
भरने लगता है एक रग
धीरे-धीरे एक लैण्डस्केप
मन मे उभरता है।

लहरिया ओढे ऊँचे-नीचे टीले
फोग, खीप और झाड
चैताई की धुन
भरने लगती है मादक सगीत
खुरदरे खेजडे का तना
जवान जाट के बेटे की तरह
मसें भीगी
मुर्की और पातडी पहने
ओढ लेता है
हरा दुशाला

क्षण-भर को झूम उठती है
तपी देही।

केशरिया मरोड्दार साफा
बांधे खडा है
ठाकर का कवर
खेत मे अकेला
रोहिडे का पेड
कँटीली कीकरें
पीली लवग की बेंदियाँ
पातडो के झुमके लटकाये
ढोल और मजीर बजाती
धम्मार मे
डूब गया है कांकड।

उछाह मे मोर की तरह
नाच उठा है सरकडा
मन की देहरी से
सफेद रूमाल हिलाता
झाले देता है मौसम को।

बडबेरियो का झुंड
लाल-पीले फूलो टँका
ओढना ओढ
गणगौर के गीत गाता
और छोटी बच्ची कटेलियाँ
कलश भरे पीले फूल
क्षण-भर को मन के कँटीले तीखे
और खरँरे शूल
घुल गय है फूलो मे
उछाह मे।

पूरा कांकड़ नयी जिन्दगी के लिए
लहरा उठा है ढाणी का

परिवेश
वाकई यात्रा कभी समाप्त
नही होती
शुरू होती है
पडाव-दर-पड़ाव ।

पेड़ उदास है

फागुन की तरह नाचता
और पत्तो के तासे बजाता
यह पेड
चहकना रगीन चिडियाओ का
गिलहरियों से आँख मिचौनी
खेलता यह पेड
नयी कोयलो की सुगबुगी
सगीत की लहरियाँ बिखेरता
यह पेड
आज उदास है।

कसाई की तरह बकरे-सा
नाप-जोख रहा है खरीददार
कितना मास कितनी खाल
तना और डालें, जलावन
कितना भाव-ताव कितना लाभ
धराशायी कर कसाई
लट्ठे मे समेट
ले जायेगा कस्सावखाने में।

आरे मे बोटी-बोटी कर
छीद दिया जायेगा इसे
और फिर ट्रक भरकर
बड़े शहर की ओर

बिकाने के लिए कोई ले जायगा
वाकई यह पेड उदास।

चिड़िया या तो चुप है
या भयाक्रान्त
गिलहरियाँ चिपकी पडी है
एक ओर
पत्ते सुन्न झप्प है
जैसे अधड़ से पहले।

कस्साब बार-बार बकरे पर
थप्पी मारता है
और अदाजता है मास
पेड जानता है आखिर
कब तक बकरे की माँ
खैर मनाएगी
उसे तो ठीए और छुरे के
बीच टुकड़े-टुकड़े होना है
एक न एक दिन।

भला लग सकता है

चिडिया का फूल से रस लेना
और फुदक कर दूसरे फूल मे
चोच मारना
रस की सारी चमक अपने मे
समेटे यह छोटी चिडिया
भली लग सकती है

भली लग सकती है कमेडी
की गर्दन फुलाई हुकार
बुलबुल का यह जोडा
हुदक-हुदक कर सगीत गा
सकता है
काली चिडिया
तिनके बीनती और गृहस्थी
बसाती अच्छी लग सकती है
गिलहरियो की आँख-मिचौनी
और छोटे बसते की हुक-हुक
सुए का पजे मे
गोल लेकर खाना और फुर्र से
टें-टें कर उड जाना
भला लग सकता है
भला लग सकता है डिरगलों
का गर्मागरम सवाद ।

यह पेड़ सबका संगीत
अपने मे समोये
सब पर छत्रछाया किये
खड़ा है
पर इन्हे क्या पता
कल यह धराशायी
कर दिया जायेगा
और टुकडे-टुकडे कर
भेज दिया जायगा शहर की ओर।

साक्षात्कार

माना कि तुम सच्चाई हो
एक भयावह सच्चाई
बिना आहट किये तुम
आ गयी पिछले दरवाजे से
धीरे-धीरे शुरू किया
फैलाना एक काला जाल
मुझे अनन्त नींद में सुलाने के लिए ।

काले पहाड से निकलने वाली
चक्करदार नदी
लीलती चली गयी अचल को
सारे रगों पर स्याह पोस्टर चिपकाती
बदरंग करती चेहरों को
अन्तर में घुटता एक गुब्बारा
फूट पडने के लिए बेबस ।

श्मशान की कोई नहीं है संस्कृति
वह देखो !
पीपल की नयी कोपल
तुम्हें अँगूठा दिखाती है
मैं जानता हूँ
पीला पत्ता बन झर जायगी, एक दिन
पर जीवन्तता की लहक कम नहीं है
तुम्हें भूलने के लिए ।

एक किरण

अस्पताल अवसाद के
संगीत में डूबा हुआ
जलता हुआ अलाव छोड़
एक बनजारा चल बसा
बिलखते रहे परिजन
पर वह उड़ गया अनन्त की ओर।

अवसाद भी जिन्दगी है
एक ललक, एक लहजा
जिन्दगी जीने का
प्रगाढ़ अंधकार में दूर
दिपती है एक फुलझड़ी हँसी
क्या वह सच्चाई है?

इस बीयावान अँधेरे में
तुम यों ही
बिजली-सी कौंधती रहो
ठुमकती रहो 'पाँचमपल्ली'
जिन्दगी जीने के लिए
एक किरण काफी है आशा की।

जिन्दगी

जिन्दगी एक नायाब गुलदस्ता है
बेलबूंटो कढा गलीचा
एक चमकती आग
तुम जान लो इसका रगीन रहस्य
और फिर एक-एक बूंद
पीते जाओ शहद की
वाकई शहद का घूंट है जिन्दगी।

जिन्दगी हँसी की फुलझडी है
एक रगीन सपना
हरी-भरी घाटी का सगीत
एक उजास
पूरब की पहली किरण का
सगीत की गहराइयो मे
उतर जाओ तुम
सरगम की नदी मे तैरने लगो
मछलियों के साथ
बचपन का खेल।

जिन्दगी अहसास है ऊर्जा का
रग-रग मे फडकती
सवेदना का पुज
पेड पर चहकते पक्षियों का कलरव
इसकी भीत पर

मांड़ते चलो रगीन मांडणे
अपने आंगन मे सजा लो
संध्या का इन्द्रधनुप।

सोच लो फिर गिला न हो
बहुत से कलण्डर उड गये
यों ही हवा मे बेखबर
फटा-फट दिन ढल गये
एक-एक कर
वर्तमान की आहट भी न लगी
अतीत बिलखते रहे रात दिन।

जिजीविषा

बर्फीले समुद्र की तरह
ठहरी हुई जिन्दगी
रास्ते हो बन्द सारे
कहाँ से फूटता है स्रोत
नयी खोज के लिए
वह एक जिजीविषा है
जो काम करती है
बर्फ काटनेवाले जहाज की तरह।

जिजीविषा है एक आग
जलाए रखती है मशाल
अँधेरी गुफाओ मे
नदी की धार, एक ललक
सप्तक तक पहुँचने की।

वह दिन ऊँचाइयो का होता है
जब हवाएँ बहती है तेज
सीना तानकर झेलना
और आगे ही आगे बढ जाना
झिलमिलाती पहाडियो तक
जिजीविषा एक रागिनी है
अन्तरमन की
अनयाए लक्ष्य तक
पहुँचने की।

ढाणी का आदमी

वह वहरा ही नही
गूँगा हुआ बैठा है
कलकलाती दोपहरी मे नीम के नीचे
दो घटे अपनी घुसकाल से
उसे जबरदस्ती खेदा गया है
डरी हुई आँखें और बुझे हुक्के सा
सर लटकाये वह
एक जलते पत्थर को बैठक बनाकर
एक अरसे से उकड़ूं बैठा है।

बहरहाल ढाणी के नग-धडग बच्चो का
हुजूम रेंट सुडकता सबसे पहले
तमाशबीन-सा आ लगा
उसे कान काटने वाले और
झोली मे डालकर ले जाने वाले
के अलावा और किसी का डर नही
न पटवारी का, न लेवी वसूली का
न गाँव के ठाकुर का
या कि जगलात के मुसद्दी और
दान माँगने वाले पण्डत का।

मेरी पैण्ट और बुशर्ट से बिदक कर
वह बुझा हुक्का
सीधा पहाड़ चढ सकता था

शेर से भी अधिक डरता है वह
नाजिम से
पर एक घटे से अपनी
घुसकाल से ताक-झांक कर उसे
तसल्ली है कि यह तो
माट्टर जी का कँवर है
जो बचपन मे साथ जोहड मे नहाता था
और डगर चराता था।

वह सुल्फी की दम मार कर
अपने मे साहस बटोरता है
और अनगढ भाषा मे पढने लगता है
मेरे मुखौटे को
गाँव मे खुलने वाले मिडिल स्कूल
की चर्चा सुन
दाढी बढे हुए चेहरे और पीले दाँतो का
भूगोल कुछ और फैल जाता है।

"क्या करेंगे हम इत्ती जोत का
भैरू खेतरपाल और माता के मढ मे
जलाये हुए दीये अपनी-अपनी सुविधा देख
अँधेरे मे पगडडी और सडक नापते
राजपथ पर पहुँच गये
यह ढाणी अधकार मे फिर
भाँय-भाँय करती रही।

"क्या करेंगे इत्ती जोत का
थोडा घी और छछेदू डाल कर
जिम दीपा को जलाते रहे
वह भी हमे अँधेरे मे छोड
उसी पगडडी पर लपक गया
हम पीटते रहे पूरब का द्वार।"

उसने जहर के घूंट का तरह

सुल्फी के दम को घूंट लिया
अपने भरभराते सीने मे
और गट्ठू बैठक मे गुस्सैल सॉड-सा
नथुनो से धुआ फैंकता हुआ
बबकारने लगा—

"क्या करेंगे ? क्या करेंगे ??
बोल कँवर क्या करेंगे इत्ते प्रकाश का !!!
एक दिन वह भी
पगडडियाँ नापता राजपथ
की ओर खिसक जायगा
हमे अँधेरे मे छोडकर।"

असहाय गांव

गाय बैल और भैंसों के गले
की घंटियाँ टुनटुनाती है बेस्वाद
बिलौना औंधा टिका है कोने मे
रई खोम दी है छप्पर मे
दूध भागा जा रहा है शहर की ओर
वाकई बेस्वाद लगती हैं टुनटुनाती घंटिया।

सूने चेहरे पर मक्कड-जाल सी
हँसी टांके बच्चे बुन रहे है
जिन्दगी का हसीन गलीचा
गाँठे लगा रहे हैं पराई
समस्या सुलझाने के लिए।

गन्ना, सरसो, चना, लकड़ी सब
भागते हैं शहर की ओर
चमकदार कपडे पहन फिर-फिर
लौटते हैं गांव—चौगने दाम।

कैसा असहाय गाँव
अपना खून पिला कर पोसता है
खेत की डौल पर किलकने वाला
लड़का मनस्या
बन जाता है मनसा राम
और अपनी छतरी शहर में रोप लेता है।

गाँव मे हल्ला होता है
ग्रामोद्योग, बैंक, कॉपरेटिव, बिजली
नयी रोशनी का
कर्जदार छोटे खेतों को
लील लेते है बडे खेत
किसान से मजदूर बना गाँव
गर्भवती उन्नति भागी जा रही है
शहर की ओर
कैसा असहाय है गाँव ।

मेरा गाँव

मेरे गाँव की बागडोर
बुढओ के हाथ मे
नयी रोशनी से चुँधियाकर
वे परम्परा के हथियारो मे लडते है
हर कोने मे पचायती घर से
गलत या सही - एक ही आवाज आती है
सब ठीक है ! सब ठीक है ! !

नौजवानो का हुजूम
बर्रे के छत्ते-सा भुनभुनाता
फिरता है लक्ष्यहीन
तोडना चाहता है नयी जमीन
फिर निरुपाय-सा घुटने टेक देता है
बुढओ का दल फिर आदेशता है
सब ठीक है ! सब ठीक है ! !

चिलम मे आँच रख
बुढओ का दल हुक्का गुडगुडाता है
गलियाता है, खखारता है
रात भर तिलचट्टो की तरह अँधेरे मे
घेराबदी मजबूत करता है
गाँव मे आने वाली पगडडी
फिर बद हो जाती है।

स्वार्थवश बुढओ का दल आपसी

जूतमपैजार करता
जर्जर शरीर कांपता है
चलने की तैयारी मे पछी
पिजरे मे ताका-झांकी करता
पर गांव की चिन्ता मे वह
फिर खखारता है और उखडी हुई
आवाज मे चिल्लाता है
सब ठीक है ! सब ठीक है ! !

बाल वर्ष

छबडा सर पर और बच्चे को
कणियो पर टांके
वह बदहवास-सी
फुटपाथ की ओर लपकी
दिन-भर का श्रम
उसका हाड-हाड पिराने लगा
बबई सग्रहालय के पिछवाडे
फुटपाथ पर वह
पसर गयी।

छाती खोलकर बच्चा
चुसडने लगा
मरी हुई मुर्गी-सा दूध रहित स्तन
एक खीझ और निराशा मे
उसने बच्चे को झिड़क दिया
वह ट्यां-ट्यां करता हुआ
बाल वर्ष का विज्ञापन करने लगा।

पांचू कुम्हार

कबीरजी ने कहा—
माटी कहे कुम्हार से
तू क्यो रौंदे मोय
इक दिन ऐसा आयगा
मैं रौंदोगी तोय।

क्या रौंदेगी मुझे यह माटी
इस पचासे तक
पहले ही रूँद गया हूँ मैं
बिवाई फटे पैर
और कण्डे-से हाथ
सूखे चरस-सा झुर्राया यह शरीर
सब कुछ सब कुछ झुलस गया है
इस हावे में।

जिन्दगी-भर ढोता रहा
मिट्टी, पानी, ईंधन
और ठीकरों की
शवल में जिन्दगी जीता रहा
अब क्या रौंदेगी मुझे यह माटी ?

बाउजी।
जिन्दगी-भर मैं चाक फिराता रहा
और नापता रहा अपनी पगडण्डियाँ

घर से खदान
और जजमानों की हवेलियों तक
प्रजापति बन मैं
मिट्टी को नये रूप देता रहा
पर
तिल-तिल रिसता रहा मैं
फूटे हुए घडे-सा।

बाउजी।
थापी की हर थाप
कच्चे भांडे को देती है एक शक्ल
जिन्दगी-भर पीटता रहा मैं द्वार
पर दो रोटी और टूटी हुई टपरी मे
फूटे ठीकरो के ढेर-सा
बिखरा पडा हूँ आज
अब क्या रौंदेगी मुझे यह माटी।

यह कह कर वह गधे पर
सवार हो पीले दांत निपोरता
और बढ़ी हुई दाढी पर हाथ फेरता
दोपहरी मे
बाकी जिन्दगी तपने के लिए निकल पडा
अंतहीन पडाव की ओर।

होरी का पोता

धनियां और झुनियां मे
कुछ खटपट हुई
वे एक दूसरी को
जलती निगाहो से देखने लगी
गोबर जोडे से
शहर की ओर चल पडा
घर-आंगन, तुलसी-बिरवा, ढोल-ढमाका
सब छूट गया दूर ! बहुत दूर ! !

शहर के गदे नाले पर
एक झोपडी मे उसने बासा लिया
गोबर हाड पेलता रहा फाइव स्टार
भवन निर्माण मे
झुनियां दड़बे मे पडी
नाले की दुर्गंध ओकती रही
शोहदो के तीर-कमान झेलती रही
रात के धुंधलके मे
भयभीत भोटिया ने शिकायत की
शोहदो की
गोबर शोधित हुआ, फिर असहाय-सा
आसमान से गिर पड़ा ।

दोनो काम पर जाने लगे
गोबर दसवें माले पर

झुनियाँ पहले पर
ईंट-पत्थर ढोते रहे
रात के धुंधलके में उसने
फिर शिकायत की ठेकेदार की
गोबर फिर आसमान से गिर पड़ा
और डर से घिघियाने लगा।

क्रोध, डर और घिघियाहट
के क्षणों में उस गंदे नाले
की झोंपड़ी में
एक बच्चे ने जन्म लेने की सोची
झुनियाँ दर्द से कराहती रही
पर कोई सान्त्वना देने नहीं आई
न दायी न बड़ी अम्मा।

उसे अपनी सास धनियाँ की
याद आई
जो आँखें तरेरने के साथ दुलारती भी थी
गोबर बदहवास-सा
झोंपड़ी के आसपास
भय, त्रास और जिज्ञासा लिये
मंडराता रहा
थोड़ी देर में नवजात स्वर फूट पड़ा
व्हाय! व्हाय!! व्हाय!!!

दरअसल होरी के पोते ने
महानगर में जन्म लिया
न थाली बजी, न चौक पुजा
न जच्चा गवी
भोटिया दर्द से कराहती रही
गोबर भय और उल्लास
के बीच झूलता रहा।

सोचा है कभी

घर के कोने मे पडी
पेट्रोल की पीपियाँ
सुग-बुगा रही है,
चाकू-छुरी रसोई घर से
चल कर जा बैठे है डाइगरूम मे।

सवाद चल पडा है
लाठी तलवार बदूक मे
तुम्हारे बच्चे सहमे-सहमे
दीवार से सटे खडे है
भयाक्रान्त
चुप्पी साधे है बुजुर्ग
लपेट लिया है औरतो ने बुर्का।

तुमने सोचा है कभी
खतरा दस्तक देता दरवाजे पर
तोडता आ रहा है दीवार पर दीवार
बारूद बिछी है घर के चारों ओर
सिरफिरे फेंकते आ रहे है
चिनगारियाँ।

क्या यह सच है

मल्लू खटीक को
अलाट हुई है धरती
पहाड की जड मे
क्या यह सच है ?
उसके पैर अपनी कही जाने वाली
धरती और आँखें आसमान में।

वह धडकते दिल से पूछती है
क्या यह सच है ?
ऐसा कभी होता तो नही
पर हो रहा है, लोग कहते हैं
मल्लू खटीक को अब भी
यह सब अविश्वसनीय लगता है।

पोस्टर

शाही खजाने से फेंके गये
शब्द
पोस्टर बनकर, चिपक गये हैं दीवार पर
और वही से घूरने लगते है
आदमी देखता है
मुंह बिचकाकर चल देता है
वे भीतरी तह तोडकर
तग गलियो मे
चक्कर मार आते है।

हवा मे फेकें गये शब्द
उसके कान मे गर्म शीशे
से रेंगते है
अकेले मे वह उन्हे
गली मे भ्रूण की तरह
फेंककर दौड़ पडता है
घर की ओर।

भय से मुड़कर देखता है और आश्वस्त हो
कपाट भेड़ लेता है
वह निढाल हो पलग पर लेटता है
परिवर्तन के लिए खोलता है टी. वी.
"टिकाऊ जिन्दगी के लिए
जरूरी है परम्परा से चिपके रहना"

फिर उसी पोस्टर को देखकर
वह चिहुक पडता है
और हथियार डाल देता है
शब्द उसका मुस्कराकर
स्वागत करते हैं।

कहा नहीं जा सकता

ऊपर से रेतीली जमीन कब
ठोस होने लगती है कहा नही
जा सकता, कब
रातो-रात आदमी के दांत
दरांती बन जाते है
नाखून किसी की अतड़ियाँ
खेंचने को हो उठते है बेचैन।

कुछ कहा नही जा सकता
कब धोती तहमद मे
तहमद पेटीकोट मे बदलकर
करने लगता है जासूसी,
चलती हुई भीड़ बिफर
उठती है, चुप्पी बदल जाती है
नारो मे,
सचमुच कब क्या हो सकता है
कुछ कहा नही जा सकता।

वह आदमी

खेत में क्यार काटता वह आदमी
और पाला झाडती वह औरत
उनका बच्चा मिट्टी के
महल बनाता है
तुलियां टांक खिडकी लगाता है
खिडकी के पार झांकता है
जिन्दगी का एक दृश्य
जो अभी बहुत रगीन है।

मिट्टी के महल को खिसकते
क्या देर लगती है
लो जिन्दगी सटाक से
बचपन लांघ गयी
मसें भीगते ही वह
आदमी बन जाता है
उसके साथ एक औरत फूलोदार
लाल ओढ़ना ओढे
फलेस झाडती है
उसका लँहगा धीरे-धीरे
झाड़ो में उलझने लगता है
वह मुस्कराने के बजाय
कराहने लगती है।

जिन्दगी एक बेमेल मौसम है

मौसम धारदार आरे की तरह
चीरता है उसे
वह निस्सहाय होकर
झलता है प्रत्येक दांवपेच
उसकी किताब के पन्ने
और उसकी इबारत तय है
भविष्य का सपना
गायब है उसके लिए।

कच्ची बस्ती सिपाहियान

वह वर्दी पहन कर
रोबीला बन जाता है
"मेरे योग्य सेवा"
अत्याचार का प्रतीक
पर जब वह अपने ही
घर होता है
स्वय एक सर्वहारा का
उदाहरण होता है।

इस गदी कच्ची बस्ती मे
जहाँ सुअर हुडहुडाट करते
गदगी के ढेर से जूझ रहे है
उसके बच्चे लंगड़ी टाँग
खेलते रहते हैं, मिट्टी मे लदे-फँदे
और उसकी सूखे चेहरे वाली औरत
मकान के सामने ही कूड़ा फेंक जाती है।

कौवे और सूअर कूडे पर झपटते
गुत्थम-गुत्था होते हैं
बच्चे भी गुत्थम-गुत्था हो झगडते है
और उनके अधनगे शरीर
मैले और कीचड मे सँद जाते हैं।

वर्दीधारी सिपाही बारह घण्टे की

ड्यूटी से घर आता है
बच्चे भाग कर उससे लिपटते ,
"काका ! काका ! ! क्या लाये"
वह अपने असली लहजे मे
उन्हे झटक देता है
"अरे ! देखते नही वर्दी गदी होगी ! "
पीली मुसकान से उसकी बीवी
एक बच्चे को काँख मे दबाए
उसका स्वागत करती है।

वर्दी खोलकर, गदे जाँघिए
और मैले चिकत्तेदार कटे बनियान मे
वह असली होता है
और अपने उदास बच्चो से
लिपट थकान भूलने की
कोशिश करता है।

बेंड बाजे वाले

वे चमचमाती वर्दी पहन
बेंड बजाते हैं
उनकी लट्टू-सी आँखें
बाहर निकल आती है
और गलफड़े फूल जाते हैं
वे उत्सव की भूमिका के रंगकार,
घर पर उनके बच्चे
मिट्टी और कीचड मे सपने बोते है।

वे पूरे जोश के साथ
ड्रम पीटते है
और मार्च पास्ट की सलामी देते है
मंत्री को या बड़े अफसर को
उनकी गर्दन टेढी खिंच जाती है
बच्चे गंदे गलियारे मे
नंग-धडंग लुक-लुक मीचणी खेलते हैं
और गली के सूअरों से टकराते है।

वे छब्बीस जनवरी या पन्द्रह अगस्त को
घंटों सर्दी या धूप में तपते
ग्राउण्ड मे नये बैल-से खड़े रहते है
नेता के आते ही ड्रम पीटते है
क्लारनेट बजाते हैं
और "जन मन गण अधिनायक जय हे"

के स्वरो मे डूब जाते है
घर पर उनके बच्चे
गाली-गलौच का पहाडा पढते
एक-दूसरे को
कीचड मे रौंधने लगते है।

वे डिनर की अफसरी पार्टी मे
एक कोने मे खड़े
अय्याशी की धुनें बजाते है
अफसरों की थुल-थुल बीवियां
रंग-बिरंगे शृंगार साजे
आने वाले फैशन पर या मौसम पर
चबड़-चबड करती हैं
और घर पर उनकी उदास बीवियाँ
कटोरदान मे सूखी रोटी धरे
उनका इन्तजार करती है।

छोटे बाबू

अफसर की घनघनाती घंटी उसके
सर पर हथौड़े-सी गाजती है
चिहुँक उठता है, फिर आश्वस्त
एक ठो गाली
बीडी फूँकता फाइल दबाए
नही होता है आदमी वह।

निरतर साथ लगी धुक-धुकी
एक अनाम भय
न जाने कब दबोचा खा जाय
मन में घृणा, चेहरे पर
आदर का मुखौटा टाँके
छोटे बाबू होता है वह।

कभी घोड़े पर बैठकर
कभी पैदल सवार की तरह
चलती है फाइलें
कभी अंधेरी गुहा में
कैद हो जाती हैं
अफसर घुड़कता है बाबू को
बाबू गलियाता है फाइलों को
देश का द्वार कभी बन्द
कभी खुल जाता है।

बाबू पचास शब्दों को
गुडगुड़ाता है जिन्दगी भर
बाबू, बाबू है अफसर, अफसर
दोनों में सेतु है लेन-देन का
या खाई है भय और आदर की।

रामूं

खपरैल से निकलकर
रामूं रेहट सुडकता और
कणगती के घुंघरू झनकाता
दगडे में आ गया।

उसने दो-तीन वार हांक लगाई
किलकारी भरी और नाच-नाच
कर घुंघरू झनकाया
घरों से निकलकर कुछ बच्चे
दगडे में आ गये
फिर मिलकर उन्होंने हांक लगाई
कीक मारी
बचे-खुचे बच्चे हाथ की
रोटियां छोड
टोल में आ मिले।

वे मिलकर आंख-मिचौनी
खेलने लगे, फिर कबड्डी, खो-खो
चढ-चढ-घोडी-आकड-चाकड़
और न जाने क्या-क्या
पर उनका मन बहुत देर तक
उस मन-बहलावे में नहीं लगा।

वे एक घेर में बैठ गये

और ऐसा खेल खेलने लगे
चील झपट्टे का, साहुकार का
मानी राजा का, हसना डाकू का
पर उनका खेल, खेल नही रहा
एक असलियत बन गया।

चील ने झपट्टा मारकर एक बच्चे को
गोथल दिया
साहूकार के कारिन्दो ने
कोड़े बरसाए
और एक बच्चा बिलबिलाने लगा
मानी राजा ने मूँछो पर ताव दिया
और एक लडके के गले मे फदा डाल दिया
हसना डाकू "मारूँगा! काटूँगा!!"
बबकारता हुआ
सबसे लूट-खसोट करने लगा
और वाकई यह खेल
अधिक गम्भीर बन गया।

इस हादसे मे एक बच्चे का
दांत टूट गया
वह दहाड मारकर रोने लगा
सब बच्चे भयभीत होकर
एक-एक कर फूट गये
धुंधलके मे दगडा
सूना हो गया।

दिशा-मैदान जाते मैने देखा
दगड़े मे कुछ आँखें
जल रही थी—अंगारे-सी
वे कस, इदी अमीन
और बोकासा की आततायी
डरावनी आँखें थी।

औरत

वह औरत सांझ से ही
रगड़ने लगती है
सिलवट्टे पर मसाला
रोटी और पेट का गणित
नोन, तेल, लकड़ी का हिसाब
धोंकने लगती है चूल्हा
सिकती रोटियां
पकती हुई उम्र।

रोज-रोज वही क्रम
सुबह और शाम
एक ही तरह के खेल से
उकताती नहीं वह
कर देती है बच्चों को जवान।

पके हुए बाल और
फटी हुई एड़ियां
मुख पर एक जमा हुआ
स्थायी तनाव
सिलवट्टे पर मसाला
रगड़ने लगती है वह औरत।

कवि के नाम

देखो ! देखो ! ! यहाँ जिन्दगी
गेहू की सुलियाँ उमग रही है
धरती फोड कर
वे चूजो की तरह फुर्र-से
उडना चाहती हैं,
वह पीले दाँतो का भूगोल
लिये मुस्कराता है
फिर पसीने-पसीने होता है
सृजन के लिए ।

देखो ! देखो ! ! यहाँ देखो
लादी उठाये
झमक-झमक एक लय और गति मे
पहाड से घर तक को नदी
जो वडी डरावनी है
नापती है ये औरतें ।

देखो ! देखो ! ! ये वच्चे
कवूतर की तरह घूगी ओढे
सर्दी नाप लेना चाहते है
वकरियों के माथ
झाड़ और झकाड के बीच
शुरू करते हैं जिन्दगी ।

'चैत की लाल टहनी' या कि
'चित्रा का नृत्य' देखो कवि पर
जिन्दगी शुरू होती है
खेत की क्यारी, डरावनी नदी
और झाड़-झकाड़ के बीच
सचमुच आदमी के अन्तर
में घुसने का
अवसर देती है कविता।

देर हो गयी है

बहुत देर हो गयी है मुझे
गांव लौटने में
बुझ चुका है अलाव
दुराव, चुप्पी साधे
पड़ा है गांव,
कुआं उजाड़, कहां है
बैलों की झमक, बारैती के गीत
गूण का झोला
हुक्के की गुड़गुड़ाहट।

फूहड़ गयी है ग्राम्य संस्कृति
मरियल आवाज में
नयी बहुएँ सिनेमायी तर्ज
गुनगुनाती है
आल्हा और बिरहा गाती धाणियां
कोल्हू, चौपट हो चुके हैं सब
बुड्ढा गांव खखारता
खाट पर पड़ा है
इंजिन की ठकाठक
टीसती है उसके दिल में।

कोहरे की परत में
धुमैले अजगर-सा

मेरी पहचान के बाहर
हो गया है यह
वाकई मुझे बहुत देर
हो गयी है गांव लौटने मे।

खबर

उसने एक खबरदार खबर
पढ़ी और चौकन्ना हो गया
धीरे-धीरे उसकी सलवटें
घुल गयीं, उछाह की लहर
चेहरे पर दौड़ गयी।

उसने भी एक खबरदार खबर
पढ़ी और तन गया
धीरे-धीरे उदासी के
समुद्र में डूब गया
आक्रोश और ईर्ष्या के तल में।

दोनो का खबर
पढ़ना और चौकन्ना होना
याकि तन्नोट हो जाना
कुछ माने रखता है
जिन्दगी का लहजा अलग-अलग।

जल्दी है

सूरज तो अपनी ही चाल से
उगता है, रास्ता तय करता
है खरामा-खरामा
आपको जल्दी
है भाग जाइए सूरज से आगे
हवाई मार्ग से।

आप तारे तोड लीजिए
आसमान के
भूल जाइए जिन्दगी का लहजा
चाँद को लाँघ आइए
दोयज का चन्द्रमा तो उसी
बाँकपन से झाले देगा।

आपको जल्दी है, जल्दी ही
पका लीजिए जिन्दगी हावे मे
टाँक दीजिए
पाँच किलो का बस्ता
अपने बच्चे की पीठ पर
अजी ! जल्दी कीजिए ना
जिन्दगी की दौड मे कहीं
आप पिछड़ न जावें।

गणेश्वर संस्कृति

पहाड आज भी साक्षी
और यह तारो भरी रात
वैसे ही हैं दोनो
पांच हजार वर्ष पूर्व
पेड़ो और वनचरो से
भरा यह अचल
खल्वाट है आज।

ताम्र युगीन सस्कृति
खोज डाली है तुमने
परत-दर-परत—जीवन-शैली
भाले और तीर की नोंक
परशु, धारदार टुकड़े
मछली-पकड़ कांटे
कुल्हाडियां, सलाइयां
नोंकदार चमकीले पत्थर।

वे शिकार को गये हैं
पेट की आग जलाए
भटकते दिन-भर
दूर-दूर जगलो मे
सध्या को लौटते हैं
अगल-बगल कधों पर टांके
हरिण, खरगोश, झगाझोली किए

माभर नील गाय।

उनकी जनानियाँ
उतारती हैं खाल, बोटियो मे बदलती हैं
बच्चे मचलते
कच्ची कलेजी के लिए
नग-धडग, ताम्रवर्णी
वे ऊँचे पहाड को
लाँघ जाना चाहते हैं।

झुण्ड के झुण्ड नचैया
आग के चारो ओर
औरतें गलबाँही डाले
रसियाँ वन जाती हैं
तुमने खोज डाला है
उनका तवई सुहाग
चूड़ियाँ, मणके, सलाइयाँ
शिल्प, सज्जा के ढेर-से उपकरण
पाँच हजार वर्षों से दबी
यादें उकेर ली हैं तुमने
पहाड आज भी है साक्षी
और यह तारो भरी रात।

'काटली' नदी के उद्गम से
ताँबे की सिल्लियाँ लादे
वे शुरू करते हैं यात्रा
पीली बगा, मोहेंजोदडो और
हडप्पा सस्कृति के पूर्वज
नदी एक सस्कृति है
बहता हुआ अलाव।

तीर, भाले, परशु, तवई तेज
ठीकरो, हड्डियो का ढेर
बोलता है एक इतिहास,

मृत भाण्डों की उकेरियाँ
ज्यामितिक कोण, त्रिकोण
हिरमच कालूंस का
यह रँगीला ससार,
गहरी नीद मे सोया था
हजारो वर्ष से
तुमने छेड़ दिया है उनीदा तार
साक्षी है यह पहाड़
और यह तारो भरी रात।

आहिस्ता-आहिस्ता यादो को
खरोच डाला है तुमने
वे कैसे थे मेरे पूर्वज
झिरमरिए पीपलपात-से कोमल
पत्थर-से कठोर
तीर कमान-सी खिंची-खिंची
टेढ़ी-बाँकी मछली-पकड़ काँटे-सी
सीधी सट्ट भाले-सी
तेज जिन्दगी जीते हुए
तैरते चले गये काटली से सिन्धु नद
साक्षी है यह पहाड़
और यह तारों भरी रात।

यह गर्म सोता, संस्कृति
के विकास का रहस्य
गर्म लौ से लौ जलती
चली आ रही है अनन्त काल से
तुमने खोज निकाली है
सस्कृति की अनोखी दास्तान
गणेश्वर से लेकर
मिस्र के पिरामिडो तक
खड़ा कर दिया है
तुमने एक पुल।

व्यापारिक अवदान
दर्प से झांकता सौन्दर्य
संस्कृतियां गुजर गयी हैं
इस पुल से
यहाँ तक पहुँच गये हम
तीर और भालो के आगे
अणु की भट्टियो तक
ससार को चुटकी भर
राख मे बदलने के लिए
क्या वाकई साक्षी होगा विनाश का
यह मौन पहाड और
ये टिमटिमाते हुए तारे ?

बेटी के नाम

ना हो उदास बेटी
ना हो उदास
खिले फूल-सी महमहाती तुम
मोगरे की कलियाँ बिखेरती
मेरे आँगन मे
कैसे छोड दूँगा तुम्हें मैं
अँधेरी गुहा मे
जिन्दगी-भर लालटेन लेकर
काली शिलाओ को
गिट्टियो मे बदलने के लिए
और अध सर्पों से बच-बचकर
रास्ता नापने के लिए
ना हो उदास मेरी बेटी
ना हो उदास।

रंग-बिरंगी कलियों को
अपने जूड़े मे टाँक कर
जिन्दगी जीने की एक ललक
बाईस वसन्तो के पार
यहाँ तक ले आई हो तुम।

मैं हूँ तुम्हारा पिता
तुम मेरी बेटी
जिसकी रग-रग मे मेरा

यौवन दौड रहा है
और तुम्हारी हँसी की फुलझड़ी
मेरे उदास मन मे धँस कर
फैला देती है उजास ही उजास
कैसे हो जाऊँगा मैं तुम्हारे खिलाफ
ना हो उदास मेरी बेटी
ना हो उदास।

सपने बुनती हुई लड़की

उम्र है उसकी
मादक सपने बुनने की
वह अपने ही दर्पण में झांकती है
गद्गद उल्लास से दीप्त
निरभ्र आकाश को
निहारती है और
अपने आसमान में
निरे सलमे-सितारे टाँक लेती है।

वह सपने सजोती है
लिपटती जाती है
रंगीन सूत में
तितली की तरह झपकाती है
सतरंगे पंख
अपने आँगन में
खिला लेती है ढेर सारे फूल
महमहाने लगती है खुशबू में।

वह सपने बोती है
भविष्य के लिए
तनिक गंभीर हो जाती है
घर और गृहस्थी, चूल्हा और चक्की
क्षण-भर को
चारदीवारी में कैद हो जाती है

पर तत्काल ही ढह जाती है दीवारें
स्वच्छंद विचरने लगती है
खुले आसमान में।

वह सचमुच सपने बोती है
गुलमुहर हो जाती है
नयी तीतियाँ उमगने
लगती हैं पीपल में
खटमिट्ठी निबुआ सुगंध
अन्तर में अभिसारने लगती है
मधुमक्खियाँ, तितलियाँ
सारा प्रदेश झंकार उठता है
एक स्वरलहरी में।

चित्रा का नृत्य देखकर

चित्रा विश्वेसरन एक नाम है
थिरकन का
जल मे उठती हिलोर वृत्ताकार
किनारे से टकराती
एक क्वणित पदचाप
लौटकर वही समुद्री हिलोर।

वह परदे के बाहर आती है
परी-सी क्वणन-क्वणन
झमकाती पदचाप
बोटलब्रुश-सी हवा में लरजती
हाथ झुकाए प्रणामी मुद्रा में
अनाम कल्पना-सी।

क्षण-भर मे फूलो की क्यारी-सा
खिल उठता है मन्द परिहास
दन्त-पक्ति की उज्ज्वल
वक-पक्ति वृत्ताकार
लय मे घुलती है
उसकी मादक हँसी
भौंहें और आँखें मटकाती है
खिल उठता है शरत् कमल ललौंछा।

चित्रा विश्वेसरन एक नाम है

मृदंग की थाप पर मचलता ज्वार
झांझ की ताल
पकड़ती है पदचाप
गोलाकार साबुनी बुलबुलों-सी
वह तैरती है मंच पर
सतरंगी लय और ताल
दर्शकों पर उड़ाती है गुलाल।

चित्रा विश्वेसरन एक नाम है
मिश्री की डली का
याह! मन में घुलती हुई
अंग-प्रत्यंगों के बांध तोड़ती
हँसी की फुलझड़ी
संगमर्मरी खजुराहो की
अप्सरा साक्षात्।

तलैया

यह खल्वाट पहाड,
दिपती हैं केवल
शिला, चट्टान
फरवे के गोल पत्थर,
वीरान पड़ा उम्र पका
यह शरीर
धीरे-धीरे सूख रहे हैं
सारे स्रोत अभिव्यक्ति के।

समय के थपेडों में
कट गये हैं सालर, धौक
तेंदू, पापड़
पहाड़ छोड़ कडियाला
शहर की ओर चला है
बन कर अमलतास
जड़ें तक उखाड़ ली हैं
ठेकेदारी ने।

कहाँ गयी वह हरियाली
पशु-पक्षियों की चहक
ग्वाल-बालो की आंख-मिचौनी
टुनटुनाती घंटियाँ
किलकारियाँ चरवाहों की
जगली जानवरो की हुकार।

वह पश्चिम मे दमकती बीजली
और पापड पर से झाले देता बीजला
मदरी मस्तानी बदली की चाल
पहाड से चूनर-सी लिपटती
एकाकार हो बरसती
धारा-धार स्मृति।

रग-रग मे रमता जल
नस-नस मे अलगोजे बजाता
रूप, रस, गध, स्पर्श
खनिज, वनस्पति, शिलाखण्डो का निचोड
भर गया है नवकुण्डो मे अथाह जल
कुण्ड-दर-कुण्ड छनता
यादें करती है
रात-रात भर परेशान प्रसव पीडा-सी।

यह लो फूट चले है
स्रोत अनगिनत
देवका, वालूका, खातीका
वांमाली, सापाली नामधारी
झरने सहस्रधार
स्वच्छ धवल दुग्धधार
वह चली है पहाड से लगातार।

बचपन मे सुगनी दादी कहती थी
गूजरो ने पहाड पर से ढुलका दी हैं
टोकणियां दूध की
चकित बचपन
किलक उठता बारम्बार
लबालब तलैया
रोमांचित हो उठता हूँ स्वयं।

सुबह-सुबह डुबकियाँ लगाने
उतरता है पहाड़ तलैया मे
आत्म-विभोर लौट पडता है
दोपहर हो जाता है लीन अपने मे
तलैया समर्पित है परिवेश को।

क्या हुआ ! क्या हुआ !!
उन अनुभूतियो का
जगल-दर-जगल कर दिये साफ
उस्तरे से मुंडा पहाड़
कभी-कभी भूले से आती है वदली
गुजर जाती है ऊपर ही ऊपर
दो बूंद टपका कर
अब रमता नही जल
सपाटबयानी होती है कविता
सूखती तलैया
सचमुच सिमट रहे हैं
सारे स्रोत अभिव्यक्ति के।

०००